International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 29-21

नारी अस्मिता का परिचायक उपन्यास ''बेतवा बहती रही''

डॉ. निकेता सिंह
व्याख्याता, भारत सरकार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, खैरागढ़, राजनांदगांव, छत्तीसगढ़

सारांश
वर्तमान समय में जब चारों ओर स्त्री–अस्मिता पर विचार–विमर्ष हो रहा है, ऐसी स्थिति में हमारे तथाकथित सभ्य समाज के सामने एक बहुत बड़ा प्रष्न सामने खड़ा हो गया है कि हमारे समाज में स्त्री का स्थान क्या है ? इस पुरुश सत्तात्मक समाज ने जो आरम्भ से ही स्त्रियों को दबा कर रखा था, आज आधुनिक सोच और षिक्षा के कारण वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गयी है एवं अपने अधिकारों की मांग करते हुए इस पुरुश प्रधान समाज को चुनौति दे रही है। आज भी आधुनिकता के इस दौर में हमारे देष में स्त्रियों की हालात ठीक नहीं है। षहरों में स्थिति थोड़ बेहतर है परन्तु गाँव में स्त्रियों की स्थिति दयनीय और भयावह है। स्त्रियों की इसी दयनीय और भयावह स्थिति को मैत्रेयी पुश्पा जी का उपन्यास 'बेतवा बहती रही' बखूबी उजागर करती है। प्रस्तुत उपन्यास की प्रमुख पात्र 'उर्वषी' द्वारा मैत्रेयी पुश्पा जी ने पुरुश प्रधान समाज का और नारी संघर्श और अस्मिता का जो चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है, वह हमे सोचने को मजबूर करती है कि वर्तमान भारत में नारियों की स्थिति आज भी इतना भयावह हो सकती है। खासकर पुरुश प्रधान समाज का ये सोच की बेटियों का तो अपना कोई घर ही नहीं। बेटियों को पराया धन समझा गया है। खासकर तो लोग नारी को भोग की वस्तु समझने लगे हैं। नारियों का ना तो मायका अपना होता है और ना ससुराल। इसलिए पति के मृत्यु के बाद ससुराल में 'उर्वषी' का कोई स्थान नहीं रहता है। 'उर्वषी' का भाई उसे पैसे के लालच में 'उर्वषी' की ही बचपन की सहेली के पिता को सौप देता हैं। 'उर्वषी' के दुःखों का अन्त उसके मृत्यु से होती है और एक प्रष्न हमारे सामने छोड़ जाती है कि क्या हमारे समाज में स्त्रियों को अपने आत्म सम्मान और अधिकारों के साथ जीवन जीने का कोई हक है या नहीं ?

मूलशब्दः स्त्री–विमर्ष, पुरुश प्रधान समाज का दोहरा चरित्र, दकियानूसी सोच, नारी अस्मिता

प्रस्तावना
आजकी तेज रफ्तार दुनिया में जब सब कुछ यंत्रवत हो चुका है, सब कुछ अत्याधुनिक हो चुका है, जब हम अत्याधुनिकता का लबादा ओढ़ चुके हैं, तो फिर स्त्रियों के लिए आज भी हमारी सोंच पुरानी क्यों हो जाती है ? आज जब हम पष्चिमी सभ्यता के रूप रंग को पूर्णतः ग्रहण कर चुके हैं तो क्यों निर्भया हत्याकांड के लिए दोशी कुछ एक समाज के ठेकेदारों ने निर्भया को ठहराया यह कहते हुए कि 'रात में लड़कियों को घर से बाहर रहना ही नहीं चाहिए।' एक प्रष्न पहनावे पर भी उठता है कि पहनावा औरतों में हो रहे बलात्कारों का एक कारण है क्या सलवार कमीज व साड़ी पहने हुए औरतों के बलात्कार नहीं हुए। इन सवालों के जवाब ढूँढने पर हमें जवाब एक ही मिलता है वह है हमारी मानसिकता, हमारी सोच। यही सोच एक मनुश्य को मनुश्यत्व का पाठ पढ़ाती है। सही–गलत के विशय में परखने की समझाईष देती है। यही सोच हमें बनाती है और बिगाड़ती है। जब सोच कुंठित हो जाती है तो ये विकृत मानसिकता का रूप धारण कर समाज में दुराचारों को बढ़ावा देती है। यह सोच ही आज भी आधुनिकता के परे एक स्त्री को प्रताड़ित कर रही है। आज भी दुनिया के किसी–ना–किसी कोने पर कोई–ना–कोई स्त्री पीड़ित है। दुःखी है इसका कारण हमारी सोच है। यही सोच आज के साहित्य का ज्वलंत विशय बना हुआ है जिसका एक अनूठा साक्ष्य है 'मैत्रेया पुश्पा' की उपन्यास 'बेतवा बहती रही' है।

आज जब हम सभ्य समाज में रहने उठने–बैठने का दावा करते हैं। तो फिर हम स्त्रियों, महिलाओं, औरतों के लिए अपने पिछड़ेपन को क्यों नहीं स्वीकारते ? हमें इस बात को स्वीकार करना ही होगा कि हम चाहे जितने भी सुरक्षित हो, जितने भी सभ्य हो पर स्त्रियों के विशय में हमारी सोच पिछड़ी हो ही जाती है। इसी पिछड़ी सोच के कारण आज दुनिया में बहुत सी स्त्रियाँ अपने अस्तित्व के लिए संघर्शरत है इसी अस्तित्व को तलाषती इस उपन्यास की एक पात्र 'उर्वषी' भी है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने स्त्री के अस्तित्व को उद्धाटित करते हुए इसकी भूमिका में लिखा है। ''तेजी से बदलते जीवन मूल्य। सभ्यता के थोथे आन्दोलन। आजादी के चालीस वर्शों की तथाकथित विकास उपलब्धियाँ। साथ ही गाँव की रूढ़िग्रस्त धरती। प्रगति के आयामों को विसंगतियों में घोल देने की कुप्रवृत्ति। विपन्न मानसिकता के दुमुँहे समाज में आज भी नारी मात्र वस्तु । मात्र सम्पत्ति । विनिमय की चीज।''[1] क्या वास्तव में स्त्री विनिमय की वस्तु है ? इन्हीं सवालों के जवाब ढूँढती उर्वषी प्रस्तुत उपन्यास की एक ऐसी पात्र है, जो इस समाज में पीड़ित स्त्री व उसकी वेदना का प्रतिनिधित्व कर रही है।

प्रस्तुत उपन्यास में एक स्त्री के जीवन में आने वाले उतार–चढ़ाव को बयान करते हुए लेखिका लिखती है ''औरत सदैव रहती है सहने के लिए झेलने के लिए और जूझने के लिए।''[2] यह बात किस हद तक सत्य है यह 'उर्वषी' पात्र के द्वारा इस उपन्यास में आसानी से समझा जा सकता है। 'उर्वषी' राजगिरी के एक गरीब परिवार में जन्मी एक सुन्दर, गौरवर्णी कन्या थी। वह अजीत की छोटी बहन थी। गरीब परिवार में पैदा होने के कारण उसका सम्बन्ध कलम–कागज से ज्यादा नहीं था, इसका एक कारण उसका लड़की होना भी था। 'उर्वषी' के पढ़ाई से अधिक 'अजीत' की पढ़ाई में घरवालों ने ज्यादा ध्यान दिया, जिसे बताती हुई लेखिका लिखती है–'अजीत की ही पढ़ाई रेत की नाव सी सिमट रही थी तो उर्वषी के हाथ कागज पकड़ाने का दुस्साहस कौन करता। बेटी तो वैसे ही पराया घर का दरिद्र मानी जाती है। पर उर्वषी पढ़ गयी चिट्ठी पत्री लिख सकती थी, पढ़ सकती थी।'[3] एक लड़की को दरिद्र कहना ही उसके अस्तित्व के लिए एक बहुत बड़ा सवाल है। उसे तो पैदा होते ही पराया समझना लोगों ने अपना धर्म बना लिया है। एक स्त्री

के अस्तित्व से जुड़ा एक कड़वा सच है यह परायापन जो वह पैदा होने से लेकर मरने तक अपने साथ रखती है। पिता के घर में भी वह परायी, पति के घर में भी वह परायी। वह सदैव एक भ्रम में ही जीती आई है।

लड़की जन्म लेते ही परेषानियों का सबब बनती है। जब वह छोटी रहती है एक गुड़िया के समान घर के आँगन में खेलते–कूदते पलती है। जैसे–जैसे यौवन के दहलीज पर पहुँचती है, घर वालों के लिए समस्याओं का कारण बनती जाती है। इसी संदर्भ में लेखिका का प्रस्तुत उपन्यास में कथन है ''काहे के लाने बिटिया को जनम देता है ? वो नहीं जानते कि लड़की पैदा हो के कित्तों को विपदा में डार देगी। देख रही मीरा तुम.....हम न होते तो इत्ती क्लेस मचती।''[4] वास्तव में लड़कियों को हम आज भी घर में बोझ ही समझते हैं। उनको हम सामान समझकर ही पालते हैं ताकि समय आने पर ब्याह करके उसे पराये लोगों को सौंप दें। लेखिका का कथन है–''बेटी तो मुख जोहती गइया है रे....काऊ खूँटा बाँध दो। भोली बछिया सी चल देत है....जित चाहौ उतै ही। कछू नहीं करत है रे...''[5] उर्वषी का भी स्वभाव कुछ ऐसा ही था। वह भी सीधी–सादी भोली सी लड़की थी। माँ–बाप के गरीब होने का परिणाम उसने चुपचाप ही सहा। भाई अजीत तो कसाई से भी बढ़कर नाकारा साबित हुआ था। वह तो उर्वषी का व्यापार करने चला था। उर्वषी के सौन्दर्य के बदले किसी भी रईस को उसे बेचने तक की बात अजीत के जेहन में चल रही थी। क्या करती उर्वषी इन सबके हाथों की कठपुतली बन चुकी थी। उसकी खुद की कोई सोच नहीं थी इन सभी किरदारों में वह विलुप्त सी हो चुकी थी।

वैसे भी एक चिर सत्य है जब तक एक स्त्री के सिर पर पुरुश का साया रहे, तब तक समाज उसे यथोचित सम्मान देता है। पहले पिता व भाई के साये में पलती है फिर विदा होकर पति के संरक्षण में आ जाती है। यदि किसी कारणवष पति में विच्छेद हो जाय तो यह क्रूर समाज उसे जीने नहीं देता है। आज भी समाज में एक स्त्री को पुरुश के वजूद के साथ ही हम सम्मान देते हैं पति से विमुक्त स्त्री सर्वथा अपमानित या मनहूस ही मानी जाती है। विधवा स्त्री को तो लोग कुलटा, खोटी किस्मत वाली कहकर पुकारते हैं। उसका मुख देखकर लोग रास्ता बदल देते हैं। यही सभ्य समाज का रवैया है एक विधवा व परित्यक्ता स्त्री के लिए। 'उर्वषी' के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। उसका विवाह 'सर्वदमन' नामक एक खूबसूरत युवक से हुआ। सर्वदमन से विवाह के पष्चात उर्वषी बहुत खुष थी। कुछ समय के पष्चात उसे एक खूबसूरत पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम रखा गया 'देवेष' । उर्वषी के जीवन में सब कुछ संतुलित चल रहा था कि अचानक एक दिन सर्वदमन की मोटर दुर्घटना में मौत हो गई। बस उसी दिन से उर्वषी का जीवन बदल सा गया।

उर्वषी अब अकेली हो चुकी थी। अकेली स्त्री को यह समाज कैसे जीने दे ? यहाँ तो हर एक स्त्री के पीछे एक पुरुश का अधिकार क्षेत्र है। यदि स्त्री अकेले जीवन व्यतीत करना भी चाहे तो लोग रहने नहीं देते हैं उस पर सौ लांछन लगाकर उसे मजबूर करते हैं। उर्वषी के साथ भी यही हुआ, सर्वदमन की मृत्यु के पष्चात् अजित ने उसका विवाह उसी की सखी मीरा के पिता बरजोर सिंह से तय कर दी। जब उर्वषी ने इसका विरोध किया तो अजीत ने उर्वषी के पिता समान जेठ के साथ अनैतिक संबंध होने का लांछन लगाया। यह सब अजीत पैसों के लिए ही तो कर रहा था।

वह कहता है–''रखैल बनकर रहै हमारी बहन, यो हो नही सकता उस पेर की गाँव में हमारी इज्जत आबरू नहीं हो क्या।''[6] यह षब्द उर्वषी के लिए कितना पीड़ादायक था। उसका भाई उस पर यह दोशारोपण लगा सकता है, तो बाकी लोगों से उसकी कोई आस नहीं थी। वह चुपचाप ही रही कुछ न बोली क्योंकि ''अम्मा–दादा ने भी हमेषा चुप रहने की सीख दी थी, बेटी की जात....जुबान काबू में राखे चाहिए।''[7]

वह चाहकर भी विरोध नही जता सकी। विरोध जताती तो वह चरित्रहीन साबित हो जाती, क्योंकि समाज में जब तक स्त्री अत्याचार सहते रहे, तब तक यह समाज उसको सम्मान देता रहेगा पर जैसी ही कोई विरोध जताकर अपने हक की बात करे वह चरित्रहीन हो जाती है। यही है, हमारा सभ्य व सुसंस्कृत समाज। उर्वषी के भी विरोध पर भाई अजीत ने उसे चरित्रहीन कहा। अब उसका अपने ससुराल में रहना कतई उचित नहीं था। इस संदर्भ में लेखिका प्रस्तुत उपन्यास में लिखती है–''उसका कोई घर नहीं । वह घर तो उसके पिता का है घर उसके पति का था और घर उसके भाई का। षायद हर औरत झूठे व्यामोह रच लेती है।''[8] सच तो है यह, स्त्री का कोई घर नहीं, वह हर घर के लिए ही परायी रह जाती है। पति के जीवित रहते तक उर्वषी के लिए यह संसार सुन्दर था। ''उसके पष्चात संसार कितना बेरहम होगा कैसी कठोर होगी उनके बाद की दुनिया जहाँ पत्थरों में साँसें चलती होगी बस।''[9] उर्वषी भी पत्थर हो चुकी थी। उसने अजीत का प्रतिकार किया परन्तु एक सीमा पर जाकर वह हार गई और उसने बरजोर सिंह से विवाह के लिए हामी भर दी। इस विवाह के पष्चात उस विधवा उर्वषी को पुत्र वियोग से भी गुजरना था। सब कुछ जानते हुए उर्वषी ने बरजोर सिंह से विवाह कर लिया। विवाह के पष्चात् सब कुछ बदल सा गया। 'उर्वषी' का पुत्र 'देवेष' उसके जेठ के पास ही रहने लगा था। 'उर्वषी' को नये घर में नये रिष्तों को स्वीकार करने में समय लगा। जहाँ वह मीरा की माँ बनकर खड़ी थी। कितना कश्टदायक था सब कुछ। जिस आदमी से वह घृणा करती थी उसे आज अपना षरीर भी सौंपना पड़ा। आज 'उर्वषी' की आत्मा ने भी रूदन किया वह पाशाण मूर्ति की तरह सब कुछ सहती रही। 'देवेष' से भी मिलना उसके लिए मुष्किल था। एक मेले में वह 'देवेष' से मिलने गयी। ''कैसा रोया था हिल्की बाँधकर। कितनी देर तक सुबकता रहा। मिठाई दे–देकर हार गई उसके छुई तक नहीं। कंधे में मुँह गाड़े सिसकता रहा। जाने के लिए योगेन्द्र ने गोदी में लिया तो माँ का पल्ला पकड़कर चिंघाड़ने लगा। आसपास के लोग देखने को ठिठक गये। उसकी छाती में कैसी पीर हुई थी, फट जाने जैसी .....हूक उठी फिर आँखें नीची किये लौट आयी, रोती हुई।''[10] कितना दर्द था उस बच्चे में ? ना माँ का साथ ना पिता का। क्या दोश था उस बच्चे का जिसे उसकी माँ से वंचित रखा गया? उर्वषी कितनी बेबस थी वह अपने ही पुत्र को पति के भय से अपने पास रख ना सकी। अजीत के पैसों के लालच ने उर्वषी के ममता का भी हनन कर डाला। उर्वषी फिर भी सहती रही। उसका रूप सौन्दर्य उसके लिए कलंकित हो चुका था। उर्वषी के जिस रूप के लिए बरजोर सिंह ने उससे विवाह किया था वही सौन्दर्य अब बरजोर को खटकने लगा। पहले वह अपनी वासना की पूर्ति उर्वषी से जोर–जबरदस्ती में कर लेता था लेकिन उम्र व षराब के लत के प्रभाव से उसका स्वास्थ्य व पौरुश दोनों ही दुर्बल्य हो गया। वह चाहकर भी उर्वषी से वासना की पूर्ति नहीं कर सका।

फिर एक नये बरजोर सिंह का जन्म हुआ। ''रोगी होते ही ऐयाषी पुरुश के भीतर एक संषयी तनाव ग्रस्त प्राणी जागा। उर्वषी की तरूणाई और सौन्दर्य से भयाक्रान्त और आषंकित उसका असमर्थ अषक्त पौरुश चोट पड़े व्याल सा फुफकारने लगा फिर तो गाली–गलौच, अभद्र लांछना, जो मन आये वही। वह मूक बनी घूँटती रहती।''[11] आज भी उर्वषी चुप रही निष्चेत, निश्प्राण सी मूर्ति बन चुकी थी जो अपने रिष्तों और कर्त्तव्यों का निर्वहन कर रही थी।

बरजोर सिंह के बड़े बेटे विजय सिंह का विवाह उर्वषी के ब्याह के पहले हो चुका था गौना षेश था। गौने से पहले विजय सिंह का बीमारी में आकस्मिक निधन हो गया। विजय सिंह की दुल्हनियाँ तो उस समय अबोध थी ना वह पति का सुख जानती थी और ना ही दुख, वह तो विधवा षब्द से भी अपरिचित थी। उसे क्या पता था उसका जीवन अब नश्ट हो चुका है लेकिन उर्वषी ने ऐसा होने से उसे बचा लिया वह अपनी बहू को दूसरी 'उर्वषी' नहीं बनाना चाहती थी इस भय से 'उर्वषी' ने उस अबोध का विवाह अपने छोटे पुत्र 'उदय' से करवा दिया। सबने इसका विरोध किया। परन्तु उर्वषी में ना जाने कैसे इतनी षक्ति आ गयी ? उसने निर्भयता से निर्णय लिया और उस बालिका का भविश्य सुधारा।

उर्वषी ने रिष्तों को बखूबी निभाया उसने हर रिष्ते को ईमानदारी से जिया। परन्तु जीवन में कश्ट इतने झेले कि उसका षरीर धीरे–धीरे कमजोर होने लगा। वह रूग्ण सी होने लगी थी। धीरे–धीरे उसे बिमारियों ने घेर लिया। उर्वषी भी समझ चुकी थी अब वह जीवित नहीं रहेगी उसने अपने जेठ से मिलने की इच्छा व्यक्त की। 'उर्वषी' के जेठ 'दाऊ' ने उर्वषी को देखा उनकी बूढ़ी आँखें दुःख से भर आयी लेखिका के षब्दों में–''कहाँ गयी सोने–सी दमकती उर्वषी'' दाऊ की बूढ़ी आँखें खटिया पर पड़ी रूग्ण देह में, उर्वषी को खोजने के प्रयत्न में लगी थी। षेश क्या था, मुट्ठी भर का अस्थि पंजर।''[12]

उर्वषी अपने जीवन संघर्श में अब हार चुकी थी। उसने अपनी अंतिम इच्छा व्यक्त की ''हम जियत तौ अब जा नहीं पायेंगे। देवेस के हाथ से अगिनि–दाह पर कछू हक्क नहीं रहौ हमारौ। पर एक विनती....एक अरज.....मरे पीछे वही जरइयों.....बेतवा किनारे....जा तन की खाक बेतवा में .....''[13] परन्तु वह अभागिन सिरसा पहुँच ना सकी, उससे पहले ही उसने दम तोड़ दिया। जिस घर में वह जीवित, हँसती खेलती, रंगीन सपनों के साथ आयी थी, वहाँ आज वह निश्प्राण पड़ी थी। आज न वह सर्वदमन की दुल्हन थी और ना सिरसा की बहू वो तो एक अभागिन उर्वषी थी। उसका अंतिम संस्कार बेतवा नदी के किनारे ही हुआ। 'देवेष' अपनी माँ को अपने पिता के विधवा के रूप में ही विदा करना चाहता था। अंतिम विदाई का भी समय आ गया। ''आगे–आगे देवेष के साथ दूसरा कंधा उदय का था। पीछे लुटे–लुटे से दाऊ और बैरागी और महाप्रयाण की ओर चली जा रही थी। सर्वदमन की विधवा....उर्वषी। लाल लोहित सूर्य। साँझ का सुलगता आसमान। बेतवा का सुनसान किनारा। चिता जल उठी। धीरे–धीरे लपटें धुएँ के साथ आकाष को छूने लगी। चन्दन और आग की मिली–जुली गन्ध बेतवा के पाट पर फैल गयी धरती स्थिर थी अब। आकाष थमा हुआ.....बेतवा के निर्मल जल में धीरे–धीरे उर्वषी की कंचन काया समाने लगी।''[14]

आज अन्त हुआ एक अध्याय का जिसमें एक स्त्री ने ना जाने कितने कश्टों को सहा, कितने बार उसकी आत्मा रोई ? उर्वषी का सिर्फ षरीर आज नश्ट हुआ था, आत्मा तो ना जाने कब से मर गई थी। वह अपने मन से सिरसा के मोह को न निकाल सकी अंतिम साँस तक सिरसा की देहली उजली रहे के बारे में सोचती हुई पंचतत्व में विलीन हुई सिरसा के लोग कहते हैं ''आज भी नदी के पानी में कभी–कभी लपलपाती लपटें दिखलाई पड़ती है ज्यों बेतवा मइया अगिनी समाधि ले रही हो। एक–एक लहर दहकती है। पानी का रंग रकत लाल।''[15] षायद उर्वषी वही हो बेतवा के किनारे अपने अस्तित्व के लिए भटकती मरने के बाद भी वह मुक्त न हो सकी, बेतवा के मोह को खत्म न कर सकी।

'उर्वषी' जैसी कितनी ही महिलाएँ आज भी पीड़ित हैं समाज के दोहरे मानसिकता के कारण। हमें इस दोहरी मानसिकताओं को समाप्त करना है, इसके साथ–साथ स्त्रियों को भी उनके अधिकार से परिचित कराना है ताकि समय आने पर वे अपने अधिकार के लिए लड़ सके और उर्वषी जैसे जीवन जीने पर मजबूर न रहे।

संदर्भ सूची

1. पुश्पा मैत्रेयी ''बेतवा बहती रही'' किताब घर प्रकाषन दिल्ली, 2014, पृ. क्र. 08
2. वही, पृ. क्र. 08
3. वही, पृ. क्र. 22
4. वही, पृ. क्र. 28
5. वही, पृ. क्र. 32
6. वही, पृ. क्र. 106
7. वही, पृ. क्र. 183
8. वही, पृ. क्र. 109
9. वही, पृ. क्र. 116
10. वही, पृ. क्र. 134
11. वही, पृ. क्र. 124
12. वही, पृ. क्र. 148
13. वही, पृ. क्र. 149
14. वही, पृ. क्र. 150
15. वही, पृ. क्र. 06